International Journal of Sanskrit Research 2018; 4(3): 170-173

International Journal of Sanskrit Research

अनन्ता

ISSN: 2394-7519
IJSR 2018; 4(3): 170-173
© 2018 IJSR
www.anantaajournal.com
Received: 16-03-2018
Accepted: 20-04-2018

डॉ0 प्रियंका गुप्ता
ऐसोसिएट प्रोफेसर, हिन्दी विभाग,
एम.एच. पी.जी. कॉलेज, मुरादाबाद,
उत्तर प्रदेश, भारत

Correspondence
डॉ0 प्रियंका गुप्ता
ऐसोसिएट प्रोफेसर, हिन्दी विभाग,
एम.एच. पी.जी. कॉलेज, मुरादाबाद,
उत्तर प्रदेश, भारत

रसिकगोविंद के साहित्य में छन्द विधान'

डॉ0 प्रियंका गुप्ता

प्रस्तावना

छन्द शब्द संस्कृत के छन्दस शब्द से बना है इसकी व्युत्पत्ति छदि संवरणे धातु में असुन प्रत्यय लगाकर हुई है जिसका अर्थ हैं कामना, अभिलाषा, स्वेच्छाचार आदि और इनमें भी इसका सबसे अधिक प्रचलित अर्थ है स्वेच्छाचार। वेदों को भी छन्दस या छन्द कहा जाता है, क्योंकि आदिकाल में मृत्यु के भय से कुछ देवताओं ने अपने को गायत्री आदि छन्दों से आच्छादित या रक्षित किया हुआ था। कालान्तर में वे मन्त्र ही छन्द कहलाये।

'छन्दपति संवृणोति भावनिति छन्दः' अर्थात् जो भावों को छिपाकर रखता है वह छन्द है– इस व्युत्पत्ति के अनुसार वह काव्य या पद्यबद्ध रचना का ही पर्यायवाची बनता है। आज छन्द शब्द जिस रूप में प्रचलित है उसकी परिभाषा पण्डित रघुवरदयालु मिश्र के शब्दों में इस प्रकार दी जा सकती है; "जिस वाक्य समूह में व्याकरण के नियमों की यथाशक्ति रक्षा करते हुए मात्रा या वर्ण दोनों का निश्चित क्रम माप था संख्या हो और यति, गति और चरणों की निश्चित व्यवस्था हों, वह छन्द है।"[1]

छन्दः अर्थ और महत्त्व

छन्दों का महत्त्व आदिकाल से ही माना जाता रहा है। वैदिक काल में इसे अत्यधिक महत्त्व दिया गया और इसकी गिनती वेद के छः अंगों में की गयी। इसे वेद का पाद या पैर माना गया 'छन्दःपादौ तु वेदस्य' अर्थात् छन्द वेद का पैर (आधार) है। सचाई यह है कि छन्द का सही ज्ञान प्राप्त किये बिना कोई भी व्यक्ति सही वेदपाठ नहीं कर सकेगा और लंगडे व्यक्ति – के समान बार–बार लड़खड़ायेगा। यह बात वेद पर ही नहीं लागू होती, सारे काव्य पर भी लागू होती है, छन्द का बन्धन कविता को एक विशिष्ट लय प्रदान करता है। भाव की आन्तरिक लय ही भाषा या काव्य में आरोपित होकर छन्द के रूप में बदल जाती है। छन्द का बंधन काव्य में संगीतात्मकता का संचार करता है जिससे उसे श्रुतिपेशलता और स्मरणात्मकता प्राप्त होती है काव्य में लय, गति, यति, स्फूर्ति और झंकार भरना ही छन्द का कार्य है।

रसिकगोविंद के काव्य में प्रयुक्त छंदः– रसिकगोविंद ने केशवदास के समान सीमित छंदों का ही प्रयोग किया है। रसिकगोविंद द्वारा प्रयोग किये गये छंद निम्नलिखित हैं –
मात्राछंद :– दोहा, सोरठा, छप्पय, दंडक, अरिल्ल, रोला, कुकुभ।
वर्णवृत्त :– कवित्त, सवैया, भुजंगी।

(क) मात्राछंद :– रसिकगोविंद ने सात मात्रा छंदों का प्रयोग किया है जिसमें दोहा और सोरठा कवि का प्रिय छंद रहे हैं। अन्य मात्रिक छंदों का प्रयोग एक–दो स्थानों पर ही किया गया है।

1. दोहा :– यह अर्धसम मात्रिक छन्द है। इसके पहले और तीसरे चरणों में 13–13 मात्राएँ होती हैं और दूसरे और चौथे चरण में 11–11 मात्राएँ होती हैं। दूसरे और चौथे चरण की तुक मिलती है और इन चरणों के अन्त में गुरु लघु आना आवश्यक है। दोहे का लक्षण सर्वप्रथम 'प्राकृत पैंगलम्' में मिलता है। वहाँ इसका लक्षण इस प्रकार दिया गया है–

तेरह मत्ता प्रथम पऊ, पुणु ग्यारह देह।
पुणु तेरह ग्यारही दोहा लक्खण ऐह।[2]

आचार्यों ने दोहे के विभिन्न भेद भी बताये हैं जो उसमें विद्यमान गुरु–लघुओं के आधार पर होते हैं। दोहे में कुल 48 मात्राएँ (13+11+13+11=48) होती है।

यदि ये सभी मात्राएँ गुरु हो, जो कदापि सम्भव नहीं है, क्योंकि दूसरे और चौथे चरण के अंत में एक–एक लघु आना आवश्यक है तो पूरे दोहे में 24 गुरु हो सकते हैं। एक–एक गुरु को कम करके दो–दो लघु बढ़ते जातें है और इस तरह दोहे के विभिन्न भेद उत्पन्न होते जाते हैं। ये भेद कुल 23 होते है।
रसिकगोविंद ने अपना परिचय देने में और कहीं–कहीं उदाहरण देने के लिए दोहा छन्द का प्रयोग किया है। उनके दोहे यति, गति, मात्रा और लय सभी दृष्टि से निर्दोष बन पड़े हैं। शास्त्रीय दृष्टि से उनमें कोई दोष नहीं है। उदाहरण के लिए तीन दोहे दिये जा रहे हैं :

1. बेटा बालमुकंद कौ, श्री नारायण नाम।
   रच्यौं तासु हित गृंथ यह, रसिक गुबिंद अभिराम।।
2. उदर विदीरण भेक कौं, तिय द्रण ताहि समान।
   ता मैं शठ नर करत रति, तजि गुबिंद भगवान
3. मांषन कौ सौ पिंड यह, चंद्र बिंव है चारु।
   चहुं ओर किरनैं परति, मनहु दूध की धार।।

2. दंडकः– दंडक एक छंद न होकर विभिन्न छंदों का समूह होता है। वस्तुतः जिन मात्रिक छंदों में 32 से अधिक मात्राएँ होती हैं, उन्हें है दंडक कहा जाता है। भानु ने भी इसे "बत्तिस कल में अधिक पद, मत्ता दंडक जान।'[3] इसके अन्तर्गत भानु ने जिन छंदों का विवेचन किया है वे 37 मात्राओं वाले, 40 मात्राओं वाले और 46 मात्राओं वाले छंद हैं। लेकिन जब दंडक 32 से अधिक मात्राओं वाले छंद को कहते है, और जगन्नाथ प्रसाद 'भानु' 46 तक उदाहरण देते हैं तो यह स्पष्ट है कि इसके अन्तर्गत 33, 34, 35, 36, 37 से 46 आदि मात्राओं वाले सभी छंद आते हैं। रसिकगोविंद ने दो स्थानों पर दंडक छंद का प्रयोग किया है और इन दोनों स्थानों पर 36 मात्राओं वाले हैं। एक स्थान पर तो उन्होंने दो ही चरण रखें हैं,जो कि छंदशास्त्र की दृष्टि से दोषपूर्ण है, लेकिन दूसरे स्थान पर चार चरण वाले दो छंद रखे हैं। एक उदाहरण द्रष्टव्य है :

दंपति रूप जोबन लद्दिन जाति जुत,सहचरी सुरभि पिक हंसवानी,
फूल फल दल बिपिन बाग जल जंत्रजल सरस जलचर कमल अलि कहानी,
मोर चातक सुवा सारिका सब्द घन,तडित धारा हरी भुव वषानी,
अमल आकास उदगन निसा चंद्रिका,चंद्र चक्कोर कुमुदिनि फुलानि।।
*****
सदन सुष सेज सुभ धूप दीपावली,घान अरु पान सब सुगंध सानी,
सुरंग भूषन बसन मृदंग वीनादि नद, नृत्यगति राग रागिनी बिधानी,
मनमथ कथादि सुबिभाव श्रृंगार के, सबनि मैं एक मन की प्रधानी,
रसिक जन सुनहु गुबिंद इहि बिधि कहै, सुकबि सिरमौर पंडित प्रमानी।।

रोलाः– रोला मात्रिक समछन्द है।' प्राकृत पैगलम के अनुसार इस छंद के प्रति चरण में 24 मात्राएँ और अंत में गुरू ।() रहता है।[4] भिखारीदास ने केवल 24 मात्रा के चरण का उल्लेख किया है और यति अनियमित बताई –है। उनके उदाहरण के अंत में गुरु (ऽ) भी नहीं हैं।
रसिंकगोविंद ने 'युगलरसमाधुरी' को रोला छंद में निबद्ध किया है। कुछ उदाहरण प्रस्तुत हैंः–

स्याम अंग अंगराग चंदन घनसार गुराई।
जमुना जल पर जगमगाति जनु सरद जुन्हाई।।
सहज सुबास सरौर सरस सौंधै तैं सुन्दर।
भमर भमंत चहुँ ओर जानि जनु नील नलिन बर।।
पिय घनस्याम सुंजान प्रिया अति गोरी भोरी।
नव जोवन नु रूप अनूपम अंद्भुतं जोरी।।
हाव भाव लावन्यं सरस माधुरी मनोंहर।
अंग अंग छबि पर बारि दिए दिनकर रजनीकर।।

4. अरिल्लः– अरिल्ल के प्रत्येक चरण के चौकलों में जगंण का निषेध होता है। अंत में यगण या दो लघु रहते हैं।[5] जगन्नाथप्रसाद 'भानु' ने भी अरिल्ल में जगण (पेप) का निषेध माना है तथा अंत में।। बा पै की अवस्थिति मानी हैं।
रसिकगोविंद ने एक स्थान पर अरिल्ल छंद का प्रयोग किया है :

कथा श्रवण गुन कथन सुमरंण सुठानियै,
पंद सेवा अर्चना बंदना जानियै,
दास्य सष्य आतमा निबेदन मानियैं,
करि हरि भक्ति गुबिंद सदा सुष–दानियैं।।

5. सोरठाः– सोरठा मांत्रिक अर्द्धसम छन्द है। इसके विषम पादों में 11–11 और समपादों में 13–13 मात्राएँ होती हैं।[6] दोहे के समान इसके भी भेद हो सकते हैं। सोरठा अत्यन्त प्रचलित छंद रहा है। प्रायः सभी प्रसिद्ध कवियों ने "दोहे के साथ इसका प्रयोग किया है। रसिकगोविंद ने एक–दो स्थानों पर सोरठा छंद का प्रयोग किया है। एक उदाहरण द्रष्टव्य है :

जग कौ भूषन जान रति,पति नृप की जैतिश्री।
सा सुंदरि बिन प्रान अति, ब्याकुल सो कित ग्म्यं

6. छप्पयः– यह छः चरणों वाला मात्रिक विषम छंद है।"प्राकृत पैगंलम्' में इसका लक्षण और इसके भेद दिये गये हैं। छप्पय संयुक्त छंद है; जो गोला (11+13) चार पाद और उल्लाला (15+13) के दो पाद के योग से बनता हैं उल्लाला के दो भेदों के अनुसार छप्पय के पाँचवे और छठे पाद में 26 या 28 मात्राएँ हो सकती हैं।[7] प्रधानरूप से 28 मात्राओं भेद को कवियों ने अपनाया है।
रसिकगोविंद ने अनेक स्थानों पर छप्पय छंद का प्रयोग किया है। एक उदाहरण दर्शनीय हैः

सुनत मदन–मन लज्यौ तज्यौ पति ब्रत ब्रजनारी,
सिव समाधि छुटि गई बेद–धुनि ब्रह्म बिसारी,
पसु न चरत तृण छकित चकित नभ चंद उड़ग्गन,
थकित पवन पुनि जमुन नीर गिरि चले पुलकि तन,
पय पिवत न बालक वच्छ सब षग मृग रस बस अति मुदिता
बंसी गुबिंद व्रजचंद की वृंदाबन वाजत बिदित।।

7. कुकुभ :– कुकुभ छंद एक अप्रचलित छंद है इसलिए इसका स्वरूप भी विवादास्पद है। जगन्नाथप्रसाद 'भानु' ने ताटंक वर्ग के अन्तर्गत "लावनी' कुकुभ, रुचिरा, शोकहर आदि छंदों रखा हैं। इन छंदों में गुरू वर्णों को लघु के समान उच्चारण करने की सुविधा रहती भानु के अनुसार इस छंद में प्रत्येक चरण में 30 मात्राएँ होती हैं और 46–44 पर यति गती है तथा अंत में दो गुरु आते हैं।
रसिकगोविंद ने "अष्टदेशभाषा' के अन्तर्गत पूर्वभाषा का उदाहरण देते हुए इस छंद का प्रयोग है, लेकिन उनके छंद में प्रत्येक चरण में 32 मात्राएँ है और 46–46 पर यति है तथा चरणान्त में एक गुरू है।निश्चय ही यह व्यवस्था "भानु' की व्यवस्था से भिन्न है, लेकिन अप्रचलित छंदों की प्रायःभिन्न व्यवस्था मिलती ही रहती है। रसिकगोविंद द्वारा प्रयक्त छंद इस प्रकार है :

रंग भरे भरिं भिजवई मोर अँगिया,
दुईइ कर लिहिंस कनक पिचरुरवा।

हम सने ठन उन करत डंरत नहि,
मुख सन लगवत अतर अगरवा।
अस कस कस बसियत सुन ननदी,
फंगुन के दिन इहि गुकुल नग़रवा।
मुहिं तन तकत बकत पुनि मुसकत,
रसिकगुविंद अभिराम लँगरवा।।

(ख) वर्णवृत्तः– वर्णवृत्त या वर्णिक वृत्त वास्तव में संस्कृत काव्य में अधिक प्रचलित रहे है,लेकिन थोड़ी–बहुत मात्रा में वे हिन्दी में भी प्रयुक्त होते रहे हैं।रसिकगोविंद ने तीन वर्णवृत्तों का प्रयोग किया है।यहाँ उनका विवेचन किया जा रहा है :

1. सवैयाः– आचार्य भिखारीदास ने 24 वर्णों तक के वर्णवृत्तों को सवैया कहा है, लेकिन परवर्ती आचार्यो ने यह सीमा 22 से 26 तक मानी है और आज यही माना जाता है। यह छंद अपने लालित्य और माधुर्य के कारण सर्वप्रिय रहा है। डा० कृष्णचन्द्र वर्मा का मत हैः "सवैया की कोमलता – और मंजुलता अद्वितीय होती है। सुकुमार प्रवृत्तियों के प्रकाशन में इससे अधिक सक्षम छंद दूसरा नहीं है। वैसे आवेशपूर्ण भावों के लिए भी इसका व्यवहार किया गया है। संगीतात्मक सौकुमार्य, प्रवाहमयता आदि के लिए यह आदर्श छंद है।[8] डा० जगदीश गुप्त का मत भी इससे भिन्न नहीं है। उनका मत हैः "सवैया रीतिकाव्य का मधुरतम छंद है। वृत्तातत‍क गरिमा के अतिरिक्त इसके संगीत में कुछ ऐसी सुकुमारता सन्निहित मिलती है, जो संस्कृत के अन्य वर्ण वृत्तों में लक्षित नहीं होती और जिसका मेल भाषा की स्वर साधना में अधिक लगता है। गुरू को लघुवत ग्रहण करने की स्वतंत्रता के कारण इसमें भाषा विशेष स्वभाविकता के साथ प्रवाहमान होती है। श्रृंगार के सुकोमल भावों का संवहन करने में यह छंद ब्रजभाषा काव्य में अपना अद्वितीय महत्त्व रखता है, अर्थ की दृष्टि से एक विन्यास की जितनी सूक्ष्म संगतियाँ इसमें सम्भव हैं, उतनी अन्य वर्णिक छंदों में नहीं।[9]
सवैया एक सुन्दर और व्यवस्थित छन्द है। केशवदास, देव, सोमनाथ, भिखारीदास आदि ने इसका विवेचन किया है और जगन्नाथप्रसाद 'भानु' ने इस विवेचन को वैज्ञानिकता प्रदान की है। इनमें सबसे अधिक प्रचलित है मत्तगयन्द। दुर्मिल, किरीट और अरसात भी पर्याप्त प्रचलित है। मदिरा, सुन्दरी और वाम को अल्पप्रचलित माना जा सकता है लेकिन चकोर, मुक्तहरा, सुखी आदि का प्रयोग बहुत कम मिलता है।
रसिकगोविंद ने तीन प्रकार के सवैयों का प्रयोग अपने काव्य में किया है। इनके स्वरूप पर प्रकाश डाला जा रहा है–

मत्तगयन्द सबैयाः– यह 23 वर्ण वाला सवैया है। इसके प्रत्येक चरण में सात भगण और दो गुरु आते हैं। 'चरणान्त में दो गुरू आने से इसमें ध्वनि तरंगें मत्तगयन्द सी झूम उठती है। रीतिकाल का यह सर्वाधिक प्रिय सवैया रहा है और प्रायः सभी रीतिकालीन आचार्यकवियों ने इसका प्रयोग किया है। नरोत्तमदास, तुलसीदास, केशवदास, भूषण, मतिराम, घनानन्द आदि ने सुन्दर मत्तगयन्द लिखे हैं।
रसिकगोविंद ने "गोविंदानदंघन' में मत्तगयन्द सवैये का प्रयोग किया है। उदाहरणार्थ–

राजकुमार अनेकनि की गुन दान, कृपान जिंती छबि छाजै।
ते सब भाट वषानत गोविंद,भीम महीपति के दरवाजै।
जानि समैं नल कौं पहलैं दमयंती,पिता ढिग आनि विराजै।
कान लगाइ सुनौं चित दै हित सौं,उतकंठित है कछु लाजै।।

मुक्तहरा सवैयाः– इसमें आठ जगण होते हैं। मत्तगयन्द के आदि–अन्त में एक–एक लघवर्ण जोड़ने से यह छंद बनता हैं। 11–13 वर्णो पर यति होती है।[10] रीतिकालीन कवियों में देव, दास तथा सत्यनारायण ने इसका प्रयोग किया है।
रसिकगोविंद के "गोविंदानंदघन' में इस छंद के प्रयोग मिलते हैं। उदाहरणार्थ :

सषीनिके आछे अलापन तैं उह, कुंज मैं क्यों हूं गई सुख दैन।।
विलोकि पिया रसिया कौं नई, दुलहि सुभई भयचकृत नैंना।
लष्यौ पुनि त्यौं अपने तन को, अति गाढै गुविंद गहयौ रस लैंन।।
बिलज्जित हैं के तवै रति कूजित, कूजन कौं लगि कोमल बैंना।

दुर्मिल सवैयाः– इसमें 24 वर्ण होते हैं जो आठ सगणों से बनते हैं और 12, 12 वर्णो पर यति होती है, अन्त सम तुकान्त ललितान्त्यानुप्रास होता है।यह छंद तोटक वृत्त का दुगना है। इसका प्रयोग केशव, तुलसी से लेकर रीतिकाल तथा आधुनिक कविता में भी किया गया है। रसिकगोविंद ने "गोविंदानंदघन' में दुर्मिल छंद का प्रयोग किया है उदाहरणार्थः

ठहरैं नहि दामिनी यौं दमकै, घनघोर घटा घहरें घहरें।
हहरें हसि गांवै गुबिंद सषी, सुनि मंद फुहि छहरैं छहरें। ।
पहरैं तन भूषन रंग रंगे, पट प्रेम पगे फहरै फहरें।
गहरैं दोऊ झूलत है छवि सौं, उमगै रस की लहरें लहरैं।।

2. कवित्त या मनहरणः– कवित्त रीतिकाल के लोकप्रिय छन्दों में से एक है। इसे ही मनहरण या घनाक्षरी भी कहते हैं। इसके महत्त्व के विषय में डा० कृष्णचन्द्र वर्मा कहते हैं; "कवित्त छंद से पाठ सौन्दर्य की महिमा अपार है। राजप्रशस्ति के लिए हिन्दी में इससे बढ़कर दूसरा छन्द नहीं है। इसमें कोई भी एक भाव, विचार, परिस्थिति, मुद्रा, रूपक बहुत अच्छी तरह अलंकरण कौशल और चमत्कार के साथ प्रस्तुत किया जा सकता है।''[11]
रसिकगोविंद ने "गोविंदानंदघन' में कवित्त का प्रयोग किया है। संख्या की दृष्टि से सवैया के बाद उन्होंने कवित्त ही सबसे अधिक लिखे हैं और इस छन्द के प्रयोग में उन्हें सफलता भी मिली है। एक उदाहरण प्रस्तुत हैः

पावन गुबिंद घर बगर नगर 'कीनौं,
दीनौं अति कृपा के सुहांवन दरसु है।
हरिजू के प्यारै सब जगत तै न्यारैं रहैं,
सदा मतवारे छके प्रेम सुधा रसु हैं।
बदन निहारौं हसि आरती उतारों पद,
रज सिर धारौ वारि डारौ सरवसु है।
भई मन भई आये संत सुषदाई या तैं,
धन्य धन्य माई मेरैं आजु कौ दिवसु है।

3. भुंजगी :– भुंजगी की परिभाषा जगन्नाथप्रसाद 'भानु' के अनुसार इस प्रकार है– 'तीन यगण लघु, गुरु' (ययय ल ग)[12] इस प्रकार यह सम वर्णिक छंद है, जिसके प्रत्येक चरण में 11–11 वर्ण होते हैं। पहले तीन यगण आते हैं और अंत में लघु, गुरू।
रसिकगोविंद ने जो छंद दिया है उसमें पहले तीन चरणों में चार यगण हैं और ये चार यगण भुजंगी में न होकर भुजंग प्रयात में होते हैं। भुजंग प्रयात की परिभाषा "वृत्तरत्नाकर' में इस प्रकार दी गई है; 'भुजंगप्रयातं भवेद्देश्चतुर्भिः[13] इसी का समर्थन भानु ने भी किया है। वस्तुतः भुजंगप्रयात का स्वरूप निर्विवाद है और रसिकगोविंद को भ्रान्ति ही रही है। एक उदाहरण द्रष्टव्य हैः

बिहारी गुबिंदादि आनंदकारी।
ब्रजाधीश भारी जगज्जाल–हारी।।
प्रिया संग लीनें सवै सुष हारी।
सदा सर्वदा ही सर्व ऊपर विराजै।

प्रस्तुत छंद जो उन्होंने वर्णवृत्त हत (वर्ण विषयक त्रुटि) के उदाहरणस्वरूप दिया है, में से उनके अनुसार 'ही' अक्षर निकाल

दिया जाये तब भी चरण में 13 मात्राएँ बनती हैं इसमें कवि का दोष है या सम्पादक का यह नहीं कहा जा सकता।

संदर्भ सूची

1. पण्डित रघुवरदयालु मिश्र : पिंग प्रकाश, पृ0–5
2. अज्ञातकवि कृत : प्राकृत पैंगलम्, 1/78
3. जगन्नाथ प्रसाद 'भानु' : छंद प्रभाकर, पृ0–76
4. अज्ञातकवि कृत : प्राकृत पैंगलम्, 1/91
5. पण्डित रघुवरदयालु मिश्र : पिंगल प्रकाश पृ0–9
6. अज्ञातकवि कृत : प्राकृत पैंगलम्, 1/70
7. अज्ञातकवि कृत : प्राकृत पैंगलम्, 1/105
8. डा. कृष्णचन्द्र वर्मा : रीतियुगीन काव्य, पृ0–166
9. डॉ0 जगदीश गुप्त : रीतिकाव्य संग्रह, पृ0–126
10. जगन्नाथ प्रसाद 'भानु' : छंद प्रभाकर, पृ0–204
11. डा. कृष्णचन्द्र वर्मा : रीतियुगीन काव्य, पृ0–164
12. जगन्नाथ प्रसाद 'भानु' : छंद प्रभाकर, पृ0–138
13. केदारभट्ट : वृत्तरत्नाकर, पृ0–78